दगाबाज़ वोटर

अपनी चढ़ती जवानी में नगर सुंदरी रह चुकी और टीवी पर भी आ चुकी मोहतरमा को पूरा विश्वास था कि इस बार भी उनकी जीत सुनिश्चित है। हैट्रिक लगाने का पूरा मंसूबा था। मेयर बनने का भी ख्वाब देख रही थी। पर हाय रे, किस्मत! हार गईं। सोचा तक न था कि ऐसा होगा। लेकिन क्या करें? आखिर कोई भी मुई ऐसी नहीं थी जो उनसे ज़्यादा खूबसूरत हो। पर इस चुनाव में खूबसूरती भी दगा दे गई। अपना पहले वाला वार्ड छोड़ा, यह भी कुछ अच्छा नहीं रहा। अब क्या करें? समय कैसे कटेगा?

नोटों के बंडल कैसे आयेंगे? कई सवाल हैं। विधायिका का टिकट मिल रहा था, पर अपनों ने ही धोखा दिया। इस बार भी धोखा। कह तो यह रहे थे कि प्रचार का कष्ट क्यों उठाते हो, तुम्हें तो अपने आप वोट मिलेंगे। पर मैं उनकी बातों में नहीं आई। दम भर पूरा प्रचार किया। कोई कोताही नहीं की। लड्डू, शराब और पैसे भी बंटवाये। पर अब वोटर ही दगाबाज़ हो जाये तो कोई क्या करे?

कौन बनेगा मेयर?

नगर निगम चुनाव संपन्न हो जाने के बाद अब यह पेचीदा सवाल सामने है कि मेयर कौन बनेगा? सामान्य पार्षदों को छोड़ दें तो कुछ विशिष्ट पार्षद भी इस बार सामने आये हैं जिनके लिंक सीधे राज्य के सत्ता संचालकों से जुड़े हुए हैं। इसमें भी दो-तीन उम्मीदवार सामने हैं। इसलिए मेयर बनने का प्रश्न थोड़ा विकट हो गया है। इस 'विकटता' को देखते हुए कहा जा रहा है कि अब हुड्डा साहब ही निर्णय करेंगे कि मेयर कौन बनेगा।

राहुल पीएम कब बनेंगे?

अपने बहुचर्चित प्रेस कांफ्रेंस में प्रधानमंत्री ने साफ-साफ कहा कि अगर युवा नेतृत्व सामने आता है तो वे गद्दी छोड़ देंगे। यानी युवराज राहुल गांधी जब चाहें प्रधानमंत्री बन सकते हैं। कहा तो यह भी जा रहा है कि राहुल गांधी में अगले लोकसभा चुनाव तक धैर्य नहीं है। मनमोहन सिंह ने तो उन्हें कैबिनेट में शामिल होने का ऑफर दिया था, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। वे तो बस प्रधानमंत्री बनना चाहते हैं। देखें, यह 'पुनीत' अवसर कब तक आता है? दरअसल, यह 'राजमाता' के हाथ में है। जब वे चाहें।

क्या करें अमर?

मुलायम सिंह से अलग हो जाने के बाद अमर सिंह को कोई घास नहीं डाल रहा है। ठाकुर सम्मेलन भी करा लिया, पर उसका भी कोई फायदा नहीं हुआ। अब राजनीति में उनकी दलाल-सेवा लेने वाला कोई दिख नहीं रहा। इसलिए अब वे कभी ममता तो कभी सुषमा स्वराज के कसीदे पढ़ रहे हैं। शायद कहीं कोई लिंक बैठ जाये। राजनीति की लत ही कुछ ऐसी होती है कि आदमी से चुप बैठा नहीं रहा जाता। एक समय था कि कोई यह सोच नहीं सकता था कि मुलायम के साथ छाया की तरह साथ रहने वाले अमर कभी उनसे अलग होंगे। पर राजनीति में कब क्या हो जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता। अब तो अमर के लिए बेहतर यही होगा कि वे फ़िल्मी हीरो-हीरोइनों की कोई पार्टी बना लें और राजनीति छोड़ कर नाचना-गाना छोड़ दें।

गपशप

गडकरी समर्थकों की बोलती बंद

गुरु जी ने झारखंड की गद्दी के सवाल को लेकर भाजपा को ऐसी लंगड़ी मारी कि उसका कोई जवाब नहीं है। 28 महीने तक सरकार में रहने का ख्वाब देखने वाले पार्टी अध्यक्ष गडकरी इस भीषण गर्मी में विदेश में मौज ले रहे हैं, पर इधर पार्टी की भारी किरकिरी हो रही है। मुख्यमंत्री बनने को आतुर अर्जुन मुंडा हताश हो गये हैं। वहीं भाजपा के विरोधियों का मनोबल बढ़ गया है। पार्टी में आडवाणी गुट में भी खुशी का माहौल है। आडवाणी ने पहले ही कहा था कि गुरु जी से किसी तरह का तालमेल रखना ठीक नहीं होगा। पर गडकरी ने उनकी एक नहीं सुनी। अब गडकरी गुट के नेता अनंत कुमार से इस सवाल पर कोई जवाब देते नहीं बन रहा है। इधर कांग्रेस की नीति है कि कटौती प्रस्ताव के विरोध में मत डालने वाले गुरु जी की सरकार को किसी भी हाल में बनाये रखा जायेगा। पर उन्होंने हारकर इस्तीफ़ा दे दिया।

सांसदों की वेतन वृद्धि कब होगी?

इस ग़रीब देश के अमीर सांसदों की वेतन वृद्धि कब होगी? सरकार ने तो छठे वेतन आयोग की अनुशंसाओं को लागू कर सरकारी अफ़सरों और कर्मचारियों की बल्ले-बल्ले कर दी, पर सांसदों के बारे में कुछ नहीं सोचा। लगभग साल-दो साल पहले कई पार्टियों के सांसदों ने अख़बारों में लेख लिख-लिख कर अपनी ग़रीबी का रोना रोया था और इस बात के तुलनात्मक आंकड़े भी पेश किये थे कि दूसरे देशों के सांसदों के मुकाबले उनके वेतन-भत्ते कितने कम हैं। पर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया। अब फ़िर एक सांसद महोदय ने एक अंग्रेज़ी दैनिक में लेख लिख कर वेतन-भत्ते बढ़ाने की मांग की है और साथ में दूसरे देशों में सांसदों को मिलने वाले वेतन-भत्तों का ब्यौरा भी दिया है। क्या सरकार सांसदों के वेतन-भत्ते नहीं बढ़ायेगी? नहीं बढ़ायेगी तो वे पैसे लेकर संसद में सवाल क्यों नहीं पूछेंगे? विकास कार्यों में कमीशन आदि क्यों नहीं लेंगे? इसलिए सरकार को चाहिए कि वह शीघ्र सांसदों के वेतन-भत्तों में वृद्धि करे। अभी वह एक लाख प्रतिमाह से भी ज़्यादा है तो क्या हुआ? सरकार को बढ़ती महंगाई को भी तो ध्यान में रखना चाहिए।

लालू की चुनौतियां

इस बार लालू जी के सामने चुनौतियां ही चुनौतियां हैं। राष्ट्रीय राजनीति में कहीं का नहीं रह जाने के बाद बिहार विधान सभा चुनाव से उम्मीदें बांधे हुए हैं। लेकिन नीतीश भारी पड़ रहे हैं। इस बात को लालू अच्छी तरह से समझ रहे हैं कि बिहार विधान सभा चुनाव में उनकी दाल गलेगी नहीं। पर राजनीति है और राजनीति में बराबर लगे रहना पड़ता है। पिटे हुए पासवान का सहारा मिलने की उम्मीद है। उम्मीद तो कांग्रेस से भी है। पर इस बार वे अच्छी तरह जानते हैं कि टिकटों के बंटवारे में उनकी एक भी चलने वाली नहीं। 'राजमाता' ने स्पष्ट संकेत दे दिया है कि इस बार इससे अच्छी तरह निपटना होगा और उसे उसकी हैसियत बता देनी होगी।

माओवादी किस रास्ते पर चल रहे हैं?

पश्चिम बंगाल में पश्चिमी मिदनापुर जिले में पटरियों पर की गई तोड़-फोड़ के कारण मुंबई जा रही ज्ञानेश्वरी एक्सप्रेस के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने से 76 यात्रियों की मौत हो गई और करीब दो सौ घायल हो गये। बताया जा रहा है कि इस दुर्घटना के पीछे माओवादियों का हाथ है। समाचार माध्यमों में बताया जा रहा है कि बृहस्पतिवार रात डेढ़ बजे हुई इस हादसे की जिम्मेदारी माओवादी समर्थित पीपुल्स कमेटी अगेंस्ट पुलिस एस्ट्रोसिटीज (पीसीपीए) ने ली है।

अगर वास्तव में यह सच है तो इससे समझा जा सकता है कि माओवादी भारी भटकाव के शिकार हो रहे हैं। सत्ता के प्रतिष्ठानों पर उनका हमला तो कुछ समझ में आता है, पर यात्री ट्रेन को दुर्घटनाग्रस्त करा कर सामान्य नागरिकों की जान लेने के उनके इस कदम का कोई समर्थन नहीं कर सकता है। यह एक तरह की आतंकवादी घटना है जिसका जनहित से कोई लेना-देना नहीं है।

यह सही है कि गत दिनों में माओवादियों ने पुलिस एवं अर्द्धसैन्य बलों पर अपने हमले काफ़ी बढ़ा दिये थे। इस तरह से उन्होंने राजसत्ता को चुनौती देनी शुरू कर दी थी। पुलिस एवं अर्द्धसैन्य बलों की टुकड़ियां बार-बार उनके आगे कमजोर साबित होती रही थीं। दूसरी तरफ़, माओवादी ग़रीबों और आदिवासियों के हितों के मुद्दों को लेकर राजसत्ता से संघर्षरत थे। इससे जनपक्षधर बुद्धिजीवियों ने उनकी हिमायत करनी शुरू कर दी थी। बुद्धिजीवी यह देख रहे थे कि देश में ग़रीबों के ख़िलाफ़ जैसी परिस्थितियां बन चुकी हैं और राजसत्ता की नीतियां पूरी तरह ग़रीबों के ख़िलाफ़ हैं, उसमें यह माओवादियों का संघर्ष ही है जो उम्मीद की कोई किरण जगाता है। कम से कम यह उत्पीड़ित ग़रीबों में साहस का संचार तो करता ही है और उनमें आत्मसम्मान की भावना को जगाता है। उनका संघर्ष ग़रीबों, वंचितों और आदिवासियों में जो इतिहास के पूरे दौर में लगातार शोषण के शिकार रहे हैं, उन्हें मनुष्य होने का बोध कराता है। लेकिन शोषण से मुक्ति के लिए संघर्ष का जो रास्ता माओवादियों ने अख्तियार किया है, उससे इस देश की व्यवस्था में मूलभूत बदलाव यानी क्रांति चाहने वाले सभी लोग सहमत नहीं हैं। सहमत हो भी नहीं सकते। इसकी कई वजहें हैं। माओवादी जनसंगठन बना कर जनांदोलन की नीति पर नहीं चलते। वे गुरिल्ला युद्ध की नीति पर चलते हैं। इस देश की स्थिति ने उनके विकास के लिए पूरा खाद-पानी मुहैया कराया है और लगातार उनकी ताकत का विस्तार होता चला जा रहा है। सरकार भी यह नहीं समझ पा रही कि वह उनसे कैसे लोहा ले। माओवादियों को कुचलने के लिए सरकार ने कई विशेष अर्द्धसैन्य बलों को भी गठित किया, पर उन्हें भी अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली।

अगर माओवादी सत्ता प्रतिष्ठानों पर हमले करते हैं तो वैसे लोगों और संगठनों का समर्थन उन्हें मिल सकता है जो सत्ता विरोधी हैं। पर अगर वे निर्दोष लोगों को अपना निशाना बनाने लगे तो फिर उनमें और आतंकवादियों में फर्क क्या रह जायेगा?

लेकिन अब यात्री ट्रेनों पर हमले कर और निर्दोष लोगों की जानें लेकर माओवादी उन लोगों का समर्थन खो देंगे जो उनके प्रति सहानुभूति रखते हैं। जो वैकल्पिक मीडिया और अन्य संचार माध्यमों में उनके समर्थन में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में लेख-टिप्पणियां आदि लिखते हैं। वैसे मानवाधिकारवादी जो अब तक उनका समर्थन करते आये हैं, उनके विरोध में खड़े हो जायेंगे। दूसरी बात, निर्दोष लोगों की हत्यायें कर माओवादियों को कुछ भी मिलने वाला नहीं है सिवा विरोध के। इससे सरकार को भी उनके ख़िलाफ़ कड़ी कार्रवाई करने का बहाना मिल जायेगा।

अगर माओवादी सत्ता प्रतिष्ठानों पर हमले करते हैं तो वैसे लोगों और संगठनों का समर्थन उन्हें मिल सकता है जो सत्ता विरोधी हैं। पर अगर वे निर्दोष लोगों को अपना निशाना बनाने लगे तो फिर उनमें और आतंकवादियों में फर्क क्या रह जायेगा?

- प्रतिनिधि

लालू ने किया नक्सलियों का समर्थन

राष्ट्रीय जनता दल प्रमुख लालू प्रसाद यादव ने कहा कि नक्सली आम लोगों को नहीं मारते। वे उन लोगों को अपना निशाना बनाते हैं कि जो उनकी मुखबिरी करते हैं। यह बात अपने आप में अजीब है कि लालू प्रसाद नक्सलियों के समर्थन में क्यों बोल रहे हैं। लालू प्रसाद जैसे नेता को तो उनके सख्त ख़िलाफ़ होना चाहिए था। फिर वे यह क्यों बोलने लगे कि नक्सली निर्दोषों की हत्या नहीं करते। क्या लालू नक्सलियों का समर्थन हासिल करना चाहते हैं?

बिहार में इस वर्ष अक्टूबर में चुनाव है। एक समय अपने आप को बिहार का राजा कहने और कहलवाने वाले लालू की स्थिति राज्य में अब न तो तीन में है और न ही तेरह में। बिहार की सत्ता के दूसरे दावेदार रामविलास पासवान की स्थिति भी कोई खास नहीं है। रह गये नीतीश कुमार तो अपने पांच साल के शासन में वे भी राज्य का विकास कर पाने में पूर्णत: असमर्थ रहे। उन्होंने विकास का ढोल तो काफी पीटा, पर वास्तविक विकास कहीं एक पैसे का भी नहीं हुआ। इस चुनाव में हो सकता है कि नीतीश कुमार के जनता दल (यूनाइटेड) और भारतीय जनता पार्टी के गठबंधन को पूर्ण बहुमत नहीं मिले।

ऐसे में लालू प्रसाद रामविलास पासवान के साथ मिल कर इस बात की पूरी कोशिश करेंगे कि सत्ता उनके हाथों में आये।

बिहार देश के उन राज्यों में है जहां नक्सलवाद अपने चरम पर है। नक्सलवाद पर लगाम लगा पाना न तो राज्य सरकार के वश में है और न ही केंद्र सरकार के वश में। कहा तो यहां तक जाता है कि नक्सल प्रभुत्व वाले राज्यों पर शासन उनकी मनमर्जी के बगैर नहीं किया जा सकता। झारखंड का मुख्यमंत्री बनने के तत्काल बाद झामुमो नेता शिबू सोरेन ने नक्सलियों को अपना भाई बताया था। कहीं लालू यादव भी तो नक्सलवादियों का समर्थन कर यह नहीं चाहते कि अगर उनके फिर से बिहार का मुख्यमंत्री बनने की संभावना पैदा होती है तो नक्सली इसमें रोड़े नहीं अटकायें।